ईश्वर का पितृभाव और मनुष्य का भ्रातृभाव

डॉ. एम. डी. थॉमस

यह एक अकाट्य सत्य है — 'ईश्वर को किसी ने देखा नहीं।' लेकिन विभिन्न धार्मिक परम्पराओं ने उस मूल रचनाकार के स्वरूप का विश्लेषण कर अनगिनत कल्पनाएँ एकत्र की हैं जबकि महापुरुषों ने उस शक्ति के स्वभाव की असीम अनुभूतियाँ भी अर्जित कर ली हैं। ईश्वरीय रूप-भाव का सर्वाधिक सार्थक समन्वय करने वाले तीन आयाम हं — सखा-भाव, पति-भाव, और पिता-भाव। पहले में साहचर्य, दूसरे में गहराई और तीसरे में व्यापकता का गुण झलकता है।

ईश्वर के पितृत्व के विषय में यदि सवाल किया जाये कि 'क्या ईश्वर पिता है?' तो विनम्र भाव कहना पड़ेगा कि 'ईश्वर पिता तो नहीं हैं।' इस विषय पर यह कहना अधिक समीचीन होगा कि 'ईश्वर पिता समान हैं।' ईश्वर का रूप और भाव कार्य में प्रतिफलित है और रूप, भाव तथा कार्य आपस में समन्वित है। उसका रूप, भाव और कार्य तीनों 'पिता समान' है।

ईश्वर के पिता-भाव का उल्लेख करीब सभी धर्म-पुस्तकों में कहीं-कहीं मिलता है और उस रूप में प्रयोग सभी पंथों में किसी-न-किसी प्रकार से मिलता है। ईश्वर के पितृरूप में मातृरूप रूप भी सम्मिलित है। कारण यह है कि ईश्वर लिंगातीत है और मातृत्व सुलभ विशिष्ट भावात्मक पक्ष भी उसमें विद्यमान है।

ऋग्वेद में ईश्वर के मातृ-पितृरूप का उल्लेख इन शब्दों में मिलता है: *''यो न: पिता जनिता यो विधाता''* और *''त्वं हि न: पिता बसों त्वं माता शातक्तो वभूविथ''* महात्मा कबीर की साखियों में भी ईश्वर का यह वात्सल्य-भाव, माता-पिता दोनों रूपों में, भरपूर दिखाई देता है। *''कहे कबीर बाप राम राया। हुर-मति राखउ में ही।'', ''पूत पियारो पिता मों, गोंहनि लागा धाइ। लोक मिठाई हाथ दे, आपन गया भलाइ।। डारी खॉड परकि करि, अनारि रोस उपाइ। रोवत-रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ।'', ''हरि जननी मै बालिक तेरा।''* आदि पंक्तियों में यह तत्व द्रष्टव्य है। यहूदी धर्म की मान्यता के अनुसार यहोवा प्रभु पिता हैं और इस्राएली समुदाय उसकी सन्तान हैं।

बाइबिल के 'नया विधान' में ईश्वर के विषय में भरपूर एकमात्र धारणा प्रबल रूप से पायी जाती है। वह है — 'ईश्वर पिता हैं।' ईसा मसीह द्वारा इस धारणा का प्रयोग कुछ विशिष्टता लिया हुआ मालूम पड़ता है। बाइबिल में यह बात अकाट्य तौर पर प्रमाणित मिलती है। ईसा यहूदी थे। यहूदी सँस्कृति में पारिवारिक संदर्भ में बच्चे अपने पिता को आत्मीयता के साथ इब्रानी शब्द 'अब्बा', अर्थात् 'प्यार पिता', 'पप्पा' या 'डेडी' से संबोधित किया करते थे। ईसा द्वारा स्वर्गस्थ पिता ईश्वर के लिए उसी शब्द का प्रयोग किया जाना विशेष उल्लेखनीय है। अपनी मसीही दीक्षा (बपतिस्मा) तथा रूपान्तरण के अवसरों पर स्वर्ग से यह वाणी सुनाई दी, ''यह मेरा प्रिय पुत्र है, इस पर मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ'' (पवित्र बाइबिल, नया विधान, मत्ती 3:17,पृ. सं. 4)। अपने स्वर्गस्थ पिता की इस स्वीकृति के जवाब स्वरूप ईसा भी

कई बार पिता ईश्वर को सम्बोधित करते हुए दिखाई देते हैं। सलीब पर भयंकर प्राणपीड़ा भोगते हुए भी, पिता ! ..... तेरी ही इच्छा पूरी हो'', ''पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।'', ''पिता ! मैं अपनी आत्मा को तेरे हाथों सौंपता हूँ।'' (क्रमशः लूकस 22:42, पृ.सं. 136; 23:34, 46, पृ.सं. 139) इन शब्दों से विनय करना पिता ईश्वर के साथ सम्पूर्ण तादात्म्य का ही प्रमाण है। ईसा के इस सम्बोधन से पिता ईश्वर का अन्तर्जात, प्रत्यक्ष और सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिफलित होता है।

इस विशिष्ट सम्बन्ध पर आधारित होकर ईसा ने अपने शिष्यों को भी ईश्वर हमारे पिता कहकर सम्बोधित करने को कहा था (मत्ती 6:9, पृ.सं. 8)। 'ईश्वर मानव जाति के सार्वभौम पिता हैं' इस तथ्य का सैकड़ों उल्लेख ईसा के कथनों तथा अन्य विषयों के लेखों में पाया जाता है (मत्ती 5:48, पृ.सं. 8) 6:26 (पृ.सं. 9 आदि) पिता ईश्वर में ईसा के विशिष्ट पुत्रवत् विश्वास का विस्तारण करके सम्पूर्ण मानव जाति को इस अनुभूति में सहभागी बनाने का भाव इस बात में निहित है। ईसा की एक प्रार्थना इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है — ''पिता ! ..... तूने इन सब बातों को ज्ञानियों और समझदारों से छिपाकर बच्चों पर प्रकट किया है।'' साथ ही, वे अपने शिष्यों को कहा करते थे — यदि तुम फिर छोटे बालकों — जैसे नहीं बन जाओगे, तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करोगे।'' तात्पर्य है, पिता ईश्वर को जानने-समझने के लिए बाल-सुलभ सादगी, निर्मलता, भरोसा, खुलापन एवं प्रेम-भाव अनिवार्य है। 'ईश्वर के साथ कैसा सम्बन्ध जोड़ा जाय' या 'ईश्वर के पास किस भाव से जाया जाय'— यह बात इन कथनों से अभिव्यक्त है। वास्तव में यह सर्वसाधारण के लिए एक 'सुसमाचार' है। ईसा के सन्देश का सार-संक्षेप भी यही है।

ईश्वरीय पितृत्व का स्वरूप

ईश्वरीय पितृत्व की कई विशेषताएँ हैं। उसके स्वरूप-विश्लेषण के अन्तर्गत पहली बात है — सृष्टि। ईश्वर पिता तब है जब वह सृष्टि करता है और अस्तित्व देता है। जिस प्रकार कुम्हार अपने हाथ की मिट्टी से भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्तनों को रूप देता है, ठीक उसी प्रकार पिता ईश्वर सम्पूर्ण प्रकृति तथा उसमें वनस्पति, जीव-जन्तु और मनुष्य को जन्म देता है। पिता ईश्वर मूल रूप से सृष्टिकर्ता है।

ईश्वर के पिता-रूप की दूसरी खासियत है — पालन करना। पिता वह है जो अपनी सन्तानों का पालन करता है। परिपालन की इस भूमिका में उसका भला रूप व्यक्त होता है। वह आकाश वे पक्षियों तथा जल की मछलियों को खिलाता है, प्रकृति के घासों, फल-फूलों, पेड़-पौधों तथा वृक्षों को सजाता है और मनुष्यों को सँभालता है। वह सबका ख्याल करता है। वह सबके प्रति उदार है। वह सबका हित चाहता है और सबको बढ़ाता है।

पिता ईश्वर की तीसरी विशेषता है — क्षमाशीलता। वह मनुष्यों के अपराधों तथा पापों की परवाह नहीं करता है। वह सहनशील है। पथभ्रष्ट होने पर भी पश्चाताप करके लौटने वाले खोये हुए बेटे पर द्रवित होने वाला दयालु और स्नेहशील पिता है वह। वह खोया हुआ एक सिक्का वापस मिलने पर बेहद खुशी मनाने वाला महान भी है। सौ भेड़ों में से एक खो जाने पर निन्यान्वे अच्छों को छोड़कर खोई हुई उस एक भेड़ की तलाश में भटकने वाला, अत्यन्त भला गड़रिया है। घोर अन्याय, अत्याचार तथा प्राणपीड़ा सहते हुए भी ईसा ने पिता ईश्वर से विनय किया, ''पिता! इन्हें क्षमा

कर! क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।'' पिता ईश्वर के क्षमाशील हृदय का इससे बड़ा आचारपरक चित्रण क्या हो सकता है।

ईश्वर के पितृत्व की चौथी विशेषता है — समभाव। समभाव प्रेम का फल है। प्रेमी पिता सभी पर समान दृष्टि रखता है। वह किसी के साथ कोई भेद-भाव नहीं करता है। वह सबों के प्रति सद्भाव रखता है। जिस प्रकार दीपक अपने पास आने वालों को बराबरी के भाव से प्रकाश देता है, ठीक उसी प्रकार पिता ईश्वर अपनी समस्त सन्तानों के साथ समभाव का व्यवहार करता है। उसके सामने न कोई बड़ा-छोटा, न कोई धर्मी-अधर्मी या कोई भला-बुरा। वह सबों पर अपना सूर्य उगाता तथा पानी बरसाता है। ऐसा समभाव पूर्णता का परिचायक है और पूर्णत: ईश्वरीय-गुण है।

ईश्वर के पितृवत् स्वभाव की चरम विशिष्ता है — तरजीही प्रेम। रचनाकार के लिए अपनी सभी रचनाएँ बराबर हैं। दुर्बल बच्चे का ज़्यादा ध्यान रखना पिता-सुलभ स्वभाव की अनिवार्य विशेषता है। रोगियों को वैद्य की जरूरत होती है। इसलिए वह निन्यान्वे अच्छों को छोड़कर एक खोये हुए की तलाश करना जरूरी समझता है। प्रेमी से प्रेम करना आम बात है। पिता-समान ईश्वर ही पापियों से प्रेम कर सकता है। बुरे, तिरस्कृत, दलित, पतित आदि से अधिक प्रेम रखता है। वह ज्ञानियों, गणमान्यों आदि की तुलना में मुर्खों, शक्तिहीनों, नगण्यों को महान घोषित करता है। पिता-ईश्वर छोटों को भी उन तथाकथित बड़ों तथा शक्तिशालियों के बराबर स्वीकृति तथा प्रतिष्ठा से युक्त कर गौरवान्वित करता है। समभाव की चरम सीमा इस तरजीही प्रेम से प्रमाणित होती है। ईश्वर की पूर्णता भी इसी में निहित है। ईश्वर के पितावत् स्वभाव की सर्वोच्च विशिष्टता भी इसी तत्व में निखरती है।

मनुष्य का पुत्र-भाव

ईश्वर के पितृ-भाव के प्रति मनुष्य की सहज प्रतिक्रिया है — पुत्र-भाव। ईश्वर के इस पितृ-रूप को पहचानने से मनुष्य में पुत्र-रूप जागृत होता है। मनुष्य के भीतर पुत्र-भाव जागने से उसमें ईश्वर के पितृ-भाव की अनुभूति भी उपलब्ध हो जाती है। ईश्वर के पितृ-भाव का रस भोगना ही पुत्र-भाव है। उसके पितृत्व को आत्मसात् करने से मनुष्य पर ईश्वर का राज स्थापित होता है। पुत्र-भाव की जीवन-शैली को जीना ही असली साधना है। जब सभी मनुष्य ईश्वर-पिता के प्रति पुत्र-भाव से ओत-प्रोत हो जाते हैं तब ईश्वरीय परिवार का जन्म होता है।

मनुष्य का भ्रातृभाव

मनुष्य का भातृभाव ईश्वर के पितृभाव पर आधारित है। दोनों को आपस में जोड़ने वाला तत्व है — ईश्वर के प्रति मनुष्य का पुत्र-भाव। ईश्वर का पितृरूप सिद्धान्त-पक्ष है तो मनुष्य का भ्रातृरूप व्यवहार-पक्ष है। मनुष्य ईश्वर का प्रतिरूप बनाया गया है। सभी मनुष्य में ईश्वर का सादृश्य समान रूप से विद्यमान है। ईश्वरीय रूप के इस सहज प्रतिफ लन से यह सिद्ध होता है कि भ्रातृत्व का आधार कर्तव्य-भावना की प्रेरणा या पुण्य लाभ की कामना नहीं है, बल्कि ईश्वरीय प्रतिरूप और सादृश्य की सार्वजनीनता है। मानवीय अस्तित्व का यही एकमात्र ढंग है। सभी मनुष्य ईश्वर की सन्तान हैं। अत: भ्रातृत्व एक दूसरे के प्रति होने वाली बुनियादी तथा नैसर्गिक प्रवृति है।

मनुष्य ईश्वर का मन्दिर है। व्यक्ति और समाज के रूप में या व्यक्ति और व्यक्ति की सहभागिता में, मनुष्य ईश्वर-साक्षात्कार का एकमात्र स्थान है। ईंट-पत्थरों के मन्दिर-मस्ज़िद, गिरजाघर-गुरुद्वारे में ईश्वर का वास मात्र प्रतीकात्मक है। यहाँ सम्पन्न होने वाली पूजा-अर्चना भी प्रतीक मात्र है। मनुष्य ही ईश्वर का जीवन्त वास-स्थान है। इश्वर की असली पूजा मनुष्य के हृदयरूपी मन्दिर में होती है। एक-दूसरे के प्रति विचार, भाव और आचार की पवित्रता में ही मनुष्यरूपी जीवन्त मन्दिर की सार्थकता है। इसी भाव में ईश्वर की पूजा भी सफलता के साथ सम्पन्न होती है। ऐसे पवित्र मानव-भाव से ही ईश्वर के राज्य या आध्यात्मिक समाज का निर्माण होता है। तभी आदर्श मानव-परिवार की सृष्टि होती है। ईश्वर के पितृभाव की बुनियाद पर स्थापित भ्रातृत्व ही मनुष्य की सर्वोत्तम भावना है।

भ्रातृभाव मनुष्य-सेवा में अभिव्यक्त होता है। भ्रातृभाव की पूर्णता भी सेवा-भाव में निहित है। हरेक मनुष्य दूसरे को अपना पड़ोसी समझो और उसकी जरूरतों की पूर्ति करें, हरेक दूसरे को अपने से श्रेष्ठ मानें, दूसरों से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहा जाता है, उनके प्रति वैसा ही व्यवहार किया जाय — ये सब भ्रातृभाव के नींवरूपी स्वर्णिम नियम हैं। हँसने वालों के साथ हँसना तथा रोने वालों के साथ रोना उसकी प्रक्रिया है। एक-दूसरे की सेवा मानव जीवन की सर्वाधिक सहज प्रवृत्ति है और इससे भ्रातृप्रेम प्रमाणित होता है।

भ्रातृप्रेम अधिमानात्मक भी है। हालांकि यह समभाव पर टिका हुआ है, मानव की सीमा और दुर्बलताओं के कारण अधिमान की जरूरत होती है। समाज में जो हाशिये पर गिनाये जाते हैं, जो अन्धे, काने, मूक, अधिर, लूले-लंगड़े और मानसिक रूप से विकलांग हैं जो छोटे, कमजोर, गरीब, दलित, मूर्ख, तिरस्कृत माने जाते हैं, उनका विशेष ध्यान रखना भ्रातृप्रेम की चरम सीमा है। श्रेष्ठों द्वारा अश्रेष्ठों की सेवा कोई विशेष महानता नहीं है, बल्कि सहजनम मानव-भावना है। एक गाल पर मारने वाले के सामने दूसरा भी दिखाना, प्रतिकार नहीं करना, शत्रुओं से प्रेम करना, अपराधी को क्षमा करना, बुराइ के बदले भलाई करना, अत्याचार और अपमान के बदले आर्शीवाद देना आदि तरजीही भ्रातृप्रेम है। यही समभाव है। ऐसे आचरण से ईश्वरीय पूर्णता प्रमाणित होती है। इसी में मानव की गरिमा भी विद्यमान है। ज़िन्दगी की मानवीय तथा आध्यात्मिक उज्ज्वलता भी इसी से निखरती है।

पितृभाव और भ्रातृभाव

मनुष्य का प्रेम-बन्धन ईश्वर तथा सह-मनुष्य के प्रति दो दिशाओं में विकसित होता है और ये दोनों दिशाएँ एक ही बिन्दु पर हमेशा मिलती भी रहती हैं। ईश्वर का पितृभाव और मनुष्य का भ्रातृभाव एक ही सिक्के के दो पहलू हैं — पहला भीतरी पक्ष है जबकि दूसरा बाहरी। ईश्वर-पिता ने पहले हमें प्यार किया। लेकिन बदले में वह यह नहीं चाहता कि मनुष्य उसे प्यार करे, बल्कि एक-दूसरे को प्यार करे। ईश्वर-पिता ऐसी मानवीय सहभागिता में प्रसन्न रहता है। सह-मानव के प्रति जो कुछ किया जाता है वही ईश्वर के प्रति ही किया जाता है। मानव-सेवा ही ईश्वर-पूजा है। प्रेम का विशुद्धतम रूप पितृभाव और भ्रातृभाव में निहित है। पितृभाव से मनुष्य प्रेम प्राप्त करता है और भातृभाव से वह प्रदान करता है। पिता-भाव और भाई-भाव लेने और देने का समन्वित रूप है। ईश्वर का जीवन रूप मनुष्य में न पाया जाय तो मनुष्य का जीवन निरर्थक सिद्ध होगा। ईश्वर भी ईंट-पत्थरों के बने संग्रहालयों की निर्जीव दर्शनीय वस्तु रह जायेगा। मानवता की साधना में ही ईश्वर-साधना सम्पन्न होती है।

ईश्वर के पितृरूप और मनुष्य के भ्रातृरूप के समन्वित चिन्तन से ईश्वर और मनुष्य का धर्मनिरपेक्ष तथा असाम्प्रदायिक स्वरूप उभरकर आता है। ईश्वर के पितृभाव और मनुष्य के भ्रातृभाव की संयुक्त साधना मे ही भक्ति को सार्थकता तथा धर्म को सफलता प्राप्त होती है। हमें धर्म, सम्प्रदाय, भाषा ,देश, वर्ग, वर्ण, दल आदि की चहारदीवारों को भेदना होगा। हमें निहित स्वार्थ तथा संकीर्णताओं से ऊपर उठकर उस पितृ-भ्रातृ भाव को आत्मसात् करना होगा। ईश्वरता और मानवता की इस सार्वभौम और विशुद्ध रूप के समन्वय में ही विश्वबन्धुत्व की भावना का मार्ग प्रशस्त होगा। ऐसी गरिमा तथा प्रतिष्ठा से मानवता गौरवान्वित हो — यही लेखक की मंगलकामना है।

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS